A Pratibha Spandan Journal

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 13, Issue 02, July-December, 2025

पुष्टिमार्गीय वैष्णव सम्प्रदाय में नित्य व वर्षोत्सव में प्रयोग किये जाने वाले मंगल सूचक एवं पंच वाद्यों का वर्णन

Kusum Singh[1], Prof. Sangeeta Singh[2]

1 Research Scholar, Department of Instrumental Music, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
2 Professor, Department of Instrumental Music, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University, Varanasi

OPEN ACCESS

सारांश

पुष्टिमार्गी सम्प्रदाय के किसी-किसी गृह में जन्माष्अमी की बधाई एक महीना पहले से बैठ जाती है, पर प्राय: पवित्रा एकादशी से बधाई आरम्भ होती है। जन्माष्टमी उत्सव के दिन मङ्गला में भी झाँझ पखावज बजती है। माहात्म्य के मालव राग के पद और जागरण के समय बोले जाते हैं। जन्माष्टमी को पालने का दर्शन बन्द होने पर, नंदोत्सव के बाद, आशीष का पद "चिरजीयो गोपाल" आरती के समय बोला जाता है। तत्पश्चात् ढाढ़ी के पद केवल नवमी को बोले जाते हैं। नन्दमहोत्सव के बाद बधाई बन्द हो जाती है। नित्य सेवा मङ्गला से लेकर शयन आरती तक तथा वार्षिक उत्सव पर और भी विशेष ढंग से वाद्यों का आयोजन किया जाता है।

बीज शब्द *- हर्षोत्पादक, पंच, रासोत्सव, तुमुल, दरबार ।*

भूमिका

पुष्टिमार्गीय बल्लभ सम्प्रदायी कीर्तनकारों के पदों में बहुसंख्यक वाद्य यन्त्रों का नामोल्लेख मिलता है। ये उल्लेख अधिकतर श्री कृष्ण के जन्मोत्सव तथा उनकी लीलाओं से संबंधित वसंतोत्सव, डोलोत्सव, रासोत्सव और होलिकोत्सव के पदों के हैं। इनमें वर्णित वाद्य यंत्र लीला-रस के अनुरूप हैं। जैसे- कृष्ण जन्मोत्सव के वाद्य हर्षोत्पादक उदय ध्वनि वाले हैं, रासोत्सव के वाद्य आनन्ददायक मंद एवं मधुर स्वर के हैं; और होलिकोत्सव के वाद्य हो-हल्ला सूचक तुमुल ध्वनि वाले हैं। ये वाद्य यन्त्र तत, सुषिर, आनद्ध एवं घन नाम चारों जातियों के मिलते हैं। इनमें से अधिकांश भारतीय वाद्य हैं। कुछ विदेशी वाद्य भी हैं, जिनका प्रचलन मुगल दरबार के साथ-साथ ब्रज के धार्मिक क्षेत्र में भी हो गया था। कृष्ण-लीला के अन्य उत्सवों की अपेक्षा होली सम्बन्ध पदों में सर्वाधिक वाद्यों का नामोल्लेख हुआ है। अत: नित्य व वर्षोत्सव सेवा में मंगल सूचक वाद्यों व पंच वाद्यों का प्रयोग विशेष ढंग से किया जाता है।

पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय में वाद्यों का प्रयोजन

प्रस्तुत प्रणाली दो रूपों में चलती है । (1) साधारण रूप (2) विशेष रूप । इसके दैनिक क्रमों (नित्य कीर्तन) में संगीत योजना का साधारण स्वरूप रहता है तथा वार्षिक क्रम (वर्षोत्सव कीर्तन) में विशेष स्वरूप रहता है । अतः प्रत्येक क्रम को संगीत योजना तथा उसके प्रयोजन का कारण समझ लेना चाहिए ।

दैनिक क्रम (नित्य कीर्तन) की वाद्य योजना

मंगला की झाँकी से पहिले शंख-ध्वनि से मंगला की झाँकी तक केवल तानपूरा (तंबूरा) अपेक्षित रहता है । इसका कारण यह है कि इस समय गायन आलापचारी के रूप में (तालमुक्त) होता है । भगवान की बाल भावना से सेवा होती है । अतः भगवान को जागते समय श्रम न हो अतः इस समय के संगीत में ताल वाद्य का विधान नहीं है ।

तदनन्तर श्रृंगार से शयन तक गायन तालयुक्त रहता है और तंबूरे के साथ पखावज का होना आवश्यक होता है।

इस प्रकार दैनिक क्रम के लिये तंबूरा और पखावज ही पर्याप्त रहते हैं । गायन का । साथ करने वाला कोई स्वर वाद्य हो जाय तो उसे शामिल कर लिया जाता है लेकिन इस प्रकार के वाद्यों की भीड़ न हो जाय इसका ध्यान रखा जाता है ।

वार्षिक क्रम (वर्षोत्सव कीर्तन) की वाद्य-योजना

वर्ष भर के उत्सवों के इस क्रम में वाद्यों का विशेष रूप से आयोजन होता है जिसका प्रयोजन भरत मुनि के अनुसार ही है यथा-

उत्सवे चैन याने च नृपाणां मंगलेषु च ।

शुभ कल्याण योगे च विवाह करणे तथा ।।18।।

उत्पाते सभमे चैव संग्रामे पुत्र जन्मनि ।

ईदृ शेषु हि कार्येषु सर्वोतोद्यानि वादयेत् ।।19।।

- भरत नाट्य शास्त्र अ 34

वर्ष भर के इस क्रम में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी तथा अन्य जयन्तियाँ पुत्र-जन्म के अंतर्गत भगवान की लीलाओं सम्बन्धित अन्य प्रसंग अन्य प्रकार के मंगल कार्य व उत्सवों के रूप में बड़ी धूम-धाम से तनाये जाते हैं। अत: प्रफुल्लता ज्ञापन हेतु विभिन्न वाद्यों का आयोजन रहता है। इस क्रम में पखावज के साथ झाँझ होना अति आवश्यक रहता है । इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के वाद्यों का जितना वैभव हो जाय उतना ही शुभ माना जाता / उत्सव कीर्तन का स्वरूप होली के दिनों में विशेष रूप से आकर्षक रहता है।

पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय के वाद्य प्रस्तुत

प्रस्तुत प्रणाली में किन-किन वाद्यों का प्रयोग होता आया है इसकी जानकारी हमें कीर्तन साहित्य व वार्ता साहित्य से प्राप्त होती है । वर्ष उत्सव का वर्णन करते हुए ब्रजपति ने वाद्यों का नामोल्लेख करते हुए लिखा है-

चल री सिंह पौर चांचर मची जहं खेलत ढोटा दोय ।

जो न पत्याय सुने किन श्रवनन, हो हो हो हो होय ।।

अपने नैन निरखि हौं आई, कहत न बात बनाय ।

तो सों मोहन सेन देखि मन धीरज धर्यो न जाय ।।

एकन किये बनाय तिलौना, एक अरगजा भी ने।

एकन करी खोर चन्दन की, चौबा पैंदी दीने ।।

वाजत बीन, रवाब, किन्नरी, अमृत कुण्डली जंत्र ।

अधर सुधा जुत बांसुरी, हरि करत मोहिनी मंत्र।।

सुर मंडल, पिनाक अरु महुवरि जल तरंग मन मो है ।

मदन भेरि अरु राय गिड गिडी, सहनाई सुर सो है ।।

कटतार तार कर तारी दे दे बजत चुटकिन चुटकारैं ।

झाँझ झनक खंजीर बजे, भई झालर की झनकारें ।।

एक श्रृंग शंख ध्वनि पुर रही, अधर धर मुख चंग |

कर ले डफहि बजावही, इक डिम-डम ढोल मृदंग ।।

घुरै निसान नगारे की धुन, रहयों घोष एक गाज ।

दुंदुभि देव बजाय ही सब व्योम विमानन साज ।।

- कीर्तन संग्रह भाग -2, (बसंत कीर्तन) पृ. 139

वार्ता साहित्य के अंतर्गत हमें सर्वाधिक वाद्यों का उल्लेख चतुर्भुजदास कृत 'षट ऋतु वार्ता' में प्राप्त होता है । इसमें हमें 36 वाद्यो का नामोल्लेख मिलता है । वाद्यों के नाम इस प्रकार है-

मुरली, अमृत कुण्डली, जल तरंग, मदन भेरी, धौसा, दुंदुभी, निमान, महेस झाँझ, मृदंग, गिडगिड, पिनाक,

रवाब, जंत्र, सहनाई, श्रीमण्डलमुहचंग, सिंगो खंजरी, ताल, षट ताल, मंजीरा, महुवरि, धारी, दोल, करताल, तुरही, और किन्नरी ।

षट ऋतु की वार्ता - पृ. 12

इस प्रकार हमे वाद्यों के अनेक नामों का उल्लेख मिलता है यथा चंग, उपंग, किन्नगे. घटिका, मुरज, शंख आदि लेकिन मात्र नामोल्लेख से वाद्य का स्वरूप स्पष्ट नहीं इन मन्दिरों से प्राप्त स्वरूपों के संकेतों के अनुसार हम उन वाद्यों को सुविधापूर्वक समझ सकते है। अतः हम इन मन्दिरों में व्यवहृत वाद्यों के परंपरागत स्वरूपों पर प्रकाश डालेंगे।

तत वाद्य

वीणा-

वीणा भारत का प्राचीन संगीत वाद्य है। इसका वर्णन तैत्तरीय संहिता (6, 1, 4, 1) काठक सहिता) (64. 4) और मैत्रायिणी संहिता (3, 6, 8) में मिलता है। शतपथ ब्राह्मण (3, 2, 46, 13.5. 1) में शततंत्री वीणा का वर्णन आया है।

संगीत रत्नाकर में वीणा के दस भेद माने हैं यथा- एक तंत्री, नकुल, त्रितंत्री, चित्रा, विपंची, मत्तकोकिला, आलापिनी, किन्नरी पिनाकी, निसंक।

संगीत पारिणात में वीणा के आठ भेद लिखे हैं यथा- रुद्रवीणा, ब्रह्म वीणा, तुंबुरु, स्वरमंडल, पिनाकी, किन्नरी, दंडी तथा रावण हस्त।

अष्टछाप के कवियों ने वीणा का उल्लेख अनेक स्थानों पर किया है लेकिन वीणा के भेद कहीं पर दिखाई नहीं देते। यद्यपि किन्नरी व पिनाक का उल्लेख है लेकिन किन्नरी का अर्थ यहाँ पर झाँझ, झालरी, किन्नरी, के प्रसंग में एक ताल देने वाला धन वाद्य है जिसका यहाँ प्रयोग होता है तथा पिनाक अलग से वाद्य माना गया है जिसका उल्लेख आगे दिया गया है।

किन्नरी शब्द वीणा के अर्थ में केवल एक स्थान पर मिलता है यथा –

'किन्नरी बीन आदि बाजे साजें गिनत न आवें'

कीर्तन संग्रह भाग 2

(बसंत धमार) पृ. 125

लेकिन मन्दिरो में किन्नरी वीणा का न तो कोई स्वरूप मिलता है और न कोई संकेत। वीणा वाद्य का उल्लेख अनेक स्थानों पर मिलता है यथा-

बाजत बीन, रवाब, किन्नरी, अमृत कुण्डली जंत्र

सारावली 1073

'बेनू, बीना, ताल, उघटता, मुरज, मृदंग, रवाब'

आदि कुंभनदास, 120

पुष्टिमार्गीय मन्दिरो में वीणा के दो प्रकार देखने में आते हैं - **(1) वीणा** जिसमे आका व प्रकार सब रुद्र वीणा जैसा ही होता है, केवल परदों के ऊपर चार के स्थान पर एक हो तार होता है। इसे नाथद्वारा में तथा कांकरौली में विशेष रूप से बाजाया जाता है। **(2) रुद्र वीणा -** रुद्र वीणा के दण्ड की लम्बाई लगभग 12 मुठी होती है जिसकी परिधि दस अंगुल होती है। यह दंड पोले बांस का बना होता है। दंड के दोनों ओर तीन-तीन मुठो छोड़ कर दो तुंबे लगे रहते हैं जिनके नीचे की ओर चार अंगुल का छेद होता है। इन तूबो की गर्दन पतली बोतल की नार की भाँति होती है। ये तुंबे ध्वनि विस्तारक यंत्र का कार्य करते हैं। दंड के ऊपर पीतल अथवा तांबे के परदे लगे रहते हैं। दंड के ऊपर चार तार, बाई ओर एक तार तथा दाहिनी ओर दो तार होते हैं। बाई ओर पीतल का षडज वाला तार भी रहता है।

सारंगी

उल्लेख-

'गज, मुरज, आवज, सारंगी यंत्र किन्नरी बाजे।'

-परमानन्द दास

सारंगी के दो रूप मिलते हैं (1) बिना तरब वाली (2) तरब वाली। राजस्थान में इसी का दूसरा रूप 'रावण हत्या' कहलाता है। यह लगभग दो फुट लंबी होती है। इसमें तूंवें के स्थान पर खैर की लकड़ी का बना हुआ पेट होता है। जो नीचे से चपटा सारंगी व ऊपर से डमरु के आकार का होता है। यह लकड़ी को खोदकर बनाया जाता है तथा चमड़े से मढा हुआ होता है। इस पेट के मध्य में घुडच होती है जिस के ऊपर से तार कसे होते है। तरवों के लिये इसके नीचे अलग घुडज होती है। इसको कमान (गज) की सहायता से बजाया जाता है।

रवाब

'बाजत बीन रवाब किन्नरी, अमृत कुंडली जंत्र' आदि।

-सार. 1073

ऐसा लगता है कि इसका प्रचार अहोबल के समय में हो गया था। अहोबल ने रवाब का अर्थ लिखते हुए कहा है "रवं वहति वद्यस्मात तो रखावहः स्मृतः" रवाब सारंगी की ही तरह का वाद्य है किन्तु इसका सारंगी से कुछ अधिक लंबा तथा इयौदे के बराबर गहरा होता है। पेट के ऊपर का दंड सारंगी से पतला परन्तु उससे कुछ लंबा त्रिभुजाकार होता है। यह अंग्रेजी के अक्षर 'वी' की भाँति मुड़ा होता है। इसमें सात तांते लगी रहती हैं। किसी-किसी स्थान पर केवल चार व तीन ही तांते लगाई जाती हैं।

तानपुरा अथवा तंबूरा

उल्लेख –

'मुरली इक उपंग इक तंबुरा इक रवाब भाँतिन सो बजावै ',

आदि सारा. 2886

इसमें और वाद्यों के समान स्वरों का आरोहावरोह संभव नहीं है। यह स्वर को आधार तानपुरा या तंबूरा नाम का प्रयोग कम ही मिलता है। इसका कारण स्पष्ट है रूप में निरन्तर प्रस्तुत करने वाला वाद्य है और इस दृष्टि से महत्वपूर्ण भी है।

सुषिर वाद्य

शंख – ध्वनि के आधार पर इसे घोष वाद्य कहा जा सकता है। शंख प्रकृति वाद्य है, जो सामुद्रिक जन्तुओं द्वारा तैयार किया जाता है। इसका शोधन समुद्र से किया जाता है।

सामान्यत: यह एक स्वर का ही सृष्टा समझा जाता है, किन्तु अहोवल ने इसकी गणना सुषिर वाद्यों में करके इसे राग रागिनियों की उपज के योग्य ठहराया है। 'संगीत-परिजाति' में वाद्योपयोगी शंख के उदर का व्यास अंगुल बताया गया है। श्री चुन्नीलाला शेष ने "अष्टछाप के वाद्य यंत्र" में पं0 प्रभुदयाल द्वारा शंख धर राग-रागिनियों की सृष्टि की आँखों देखी घटना वर्णित की है। संस्कृत ग्रंथों में शंख मांगलिक अनुष्ठानों, युद्ध संदर्भों अथवा चतुर्भुज भगवान के वर्णन में प्रयुक्त हुआ है। शिव द्वारा शंखनाद के कई उदाहरण वांग्मय में मिलते हैं लेकिन राग सृष्टि के प्रयोग के नहीं। अष्टछाप काव्य में भी इसका रागमूलक महत्व नहीं दर्शाया गया है। इससे प्रतीत होता है कि इस काल में शंख का प्रयोग साधारणत: राग-रागिनियों के लिये नहीं किया जाता था।

बेनु विषान संख क्यों पूरत बाजे नौबत बाजा।

बाजत ढोल निसान संख रव होत कुलाहल भारी।"

संख-धुनि, भेरि, मृदंग, झालरी।

संख बंस झांझि ढफ मृदंग, ढोलना।

ताल मृदंग संख धुनि बाजत।

बाजत ताल मृदंग संख-धुनि बेला बीन उपंग।

ताल पखावज भेरि संख-धुनि गावत निति मिलि जागरन करिकै

सुकल श्रीदामा कह्यो सखनि सों अर्जुन संख बजाइये।

छत्र चंवर तूनीर संख-धुनि, धनुष चाप कर लीनो।

बाजत घंटा ताल बीन झालरी संख।

एक सृंग शंख-ध्वनि पूर रही अधर धरे मुखचंग।

दृष्टव्य है कि अष्टछाप-कवियों ने प्राय: शंख-ध्वनि का उल्लेख करके उसकी ध्वनि को ही रेखांकित किया है, न कि उसका वादन को। अत: निष्कर्ष यही निकलता है कि शंख की महत्ता ध्वन्यात्मक थी, संगीतात्मक नहीं।

बाँसुरी

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि यह बाँस की बनी होती है। मन्दिरों में इसके तीन स्वरूप प्राप्त होते हैं। (1) सीधी बजने वाली (2) आड़ी बजने वाली इसे यहाँ मुरली अथवा वेणु कहते हैं। (3) सीधी बजने वाली, लेकिन दो बांसुरी एक साथ दोनों हाथों में एक-एक लेकर बजती है। इस युगल स्वरूप बांसुरी को 'अलगोजा' कहते हैं। अलगोजा विशेष रूप से लोक गीतों के अवसर पर बजाया जाता है।

बांसुरी अथवा मुरली का उल्लेख कीर्तन साहित्य में सर्वाधिक रूप में मिलता है। यथा-

'महुवरि शहनाई चंग बांसुरी बाजत, गिरिधर लाल केलिरस' आदि।

परमा. 334

शहनाई

यह वाद्य मुस्लिम संस्कृति की देन है ऐसा माना जाता है। शायद इसीलिये संस्कृत ग्रन्थों में इसका नाम नहीं मिलता।

कीर्तन साहित्य में शहनाई का उल्लेख विशेष रूप से होली प्रसंग में मिलता है। यथा-

'मोहन संग डफ दुंदुभी सहनाई सरस पुनि राजें '

कीर्तन संग्रह (बसंत धमार) भाग 2. पृ. 125

ब्रज भाषा में श को 'स' कह कर बोलते हैं अतः सहनाई व शहनाई समानार्थी शब्द है।

शहनाई लगभग एक हाथ लंबी लाल चंदन की बनी होती है। आधे घेर के बीच के आकार वाले एक एक अंगूठे के अंतर पर आठ छिद्र होते हैं। इसका मुख चार अंगुल का होता ने पर उत्पन्न करने वाले दो इमली के पत्ते के आकार वाले पत्ते लगे रहते हैं।

अवनद्ध वाद्य

अवनद्ध वाद्य वाद्यों का घोर विशेष रूप से श्री कृष्ण जन्माष्टमी व होली के अवसर पर सुनाई देती है। पुष्टिमार्गीय मन्दिर इन वाद्यों के घनघोर शब्द से इतने गुंजायमान रहते हैं कि साधारण रूप से वार्तालाप संभव नहीं होता। दैनिक व वार्षिक दोनों क्रमों में जो वाद्य महत्वपूर्ण है उसको सर्वप्रथम लिया गया है।

करताल – यह लकड़ी का वाद्य-यंत्र है जिसके बीच के कटाव में पीतल की झाँझे लगी होती है। यह भिन्न आकारों में पाई जाती है। इसकी लम्बाई एक फुट तक होती है। बहुधा कीर्तन में ही इसका प्रयोग किया जाता है। भजन में एकतारे के साथ बजाया जाता है। करताल की जोड़ी के एक भाग में चारों अंगुलियाँ सामने कटाव होता है। इस प्रकार की दो जोडियाँ दोनों हाथों में लिए होती है। कुद लोग इसकी संगति दक्षिणात्य "करताल" से बिठाते हैं, जो युक्ति संगत नहीं है। करताल या खड़ताल का वही रूप अष्टछाप के संदर्भ में स्वीकार्य होगा जो पारम्परिक रूप से ब्रज तथा उत्तर भारतीय कीर्तन-समुदायों में व्यवहृत है।

कंसताल करताल बजावत सृंग मधुर मुखचंग।

कर करताल बजावहीं छिरकतिं सब ब्रजनारि।

दै करताल बजावति गावति राग अनूप मल्हावै।

मादल – यह बंगाल में प्रचलित अवनद्ध वाद्य है। इसका निर्माण मिट्टी से किया जाता है तथा मजबूती के लिये मिट्टी के खोल को आग में तपाया जाता है। इसकी लंबाई तीन फुट तक होती है। इसके एक मुख का व्यास 12 इंच तथा दूसरे मुख का व्यास 5 इंच होता है। इसके मध्य भाग का व्यास दोनों मुखों से अधिक होता है। अत: इसकी आकृति बीच में फूली हुई हो जाती है जोकि एक ओर जाकर संकरी हो जाती है। इसके दोनों मुखों पर चमड़े की पुड़ी को चमड़े की बद्दी द्वारा कसा जाता है। दाहिने ओर की छोटी पुड़ी के ऊपर स्याही लगाई जाती है। इसकी ध्वनि कर्णप्रिय होती है तथा दाहिने और बायें दोनों हाथों के द्वारा आघात करने पर निकलने वाले बोलों में मधुरता होती है। इसके वादक इसे कमर पर बांधकर इसे दोनों हाथों से बजाते हैं। इसे बंगाल में खोल के नाम से भी जाना जाता है तथा इसका प्रयोग भजन कीर्तन आदि में किया जाता है।

डफ – डफ एक गोलाकार चर्म आच्छादित तथा प्रचलित वाद्य है। एक गोलाकार फ्रेम जिसका व्यास तीन फुट तक होता है। इसमें एक ओर चमड़ा मढ़ा जाता है तथा दूसरी ओर खुला रखा जाता है। इसे बायें हाथ से पकड़ कर दाहिने हाथ से बजाया जाता है। इसका प्रयोग लोक नृत्य आदि के साथ किया जाता है। इसे उत्तर भारत के विभिन्न नामों से जाना जाता है। जैसे – डोयरा, डप्पु, डफली आदि। महाराष्ट्र में इसका प्रयोग लावणी के साथ किया जाता है। दक्षिण भारत में इसे "टप" के नाम से जाना जाता है।

मृदंग अथवा पखावज

मृदंग वाद्य को उल्लेख सर्वप्रथम रामायण (वाल्मीकि) में आया है। महाभारत में भी मृदंग व मुरज दो नाम मिलते हैं।

शारंग देव ने मुरज, मर्दल व मृदंग तीनों को समानार्थी माना है। उन्होंने यह भी कहा है कि भरत के अनुसार मृदंग को पुष्कर कहते थे।

भरत के नाट्यशास्त्र के से भी इस बात की पुष्टि होती है। मृदंग के तीन अंगों के रूप में तीन प्रकार के पुष्कर थे। धीरे-धीरे उनमें से एक रह गया तथा मिट्टी से बना होने के कारण कहलाया होगा।

मृदंग का मिट्टी का अंग अधिक स्थिर न रहने के कारण बाद में इसे काष्ठ का बनया गया होगा और तब इसका नाम पक्षवाद्य (दोनों पक्षों यानी बगलों से बजने वाला वाद्य) रहा होगा और कालान्तर में भाषा विज्ञान के नियम के अनुसार क्रमश: इसका नाम पखावज हो गया होगा। यथा-

पक्षवाद्य, **पखाउज**, **पखावुज**, **पखावज**,

लेकिन आकृति में समानता होने के कारण मृदंग और पखावज शब्द आजकल नार्थी रूप में प्रयुक्त होते है। श्री टी. एन. मुखर्जी ने मृदंग व पखावज के आकार में कुछ अंतर स्थापित किया था और कहा था कि पखावज मृदंग से आकार में कुछ नही। लेकिन यह अंतर व्यवहार में कोई भेद उत्पन्न न कर सका। पोषले ने श्री जे काही समर्थन किया है और पखावज को उत्तर भारत में तथा मृदंग को दक्षिण प्रचलित वाद्य बताया है।

पुष्टिमार्गीय कीर्तन साहित्य को देखने से भी यही प्रतीत होता है कि मृदंग व पखावज कोई भेद नहीं माना गया है। दोनों ही शब्दों का प्रयोग समानार्थी रूप में हुआ है। जहाँ हृदय शब्द है वहाँ पखावज नहीं है और जहाँ पखावज शब्द है वहाँ मृदंग नहीं है। को सुविधानुसार एक ही वाद्य के दो शब्दों का प्रयोग हुआ है ऐसा प्रतीत होता है। यथा-

'वेणु मुरज डफ बांसुरी बाजत ताल मृदंग'

- कीर्तन सं. (बसंत धमार) पृ. 112

'बाजत ताल पखावज सारंगी

- कीर्तन सं. (बसंत धमार) पृ. 152

यह वाद्य लगभग दो फीट लंबा व दो मुखवाला होता है। इसके पेट की परिधि से अधिक होती है। दोनों मुख चमड़े से मढ़े होते हैं तथा चमड़े के तस्मों से रहते हैं।

पुष्टिमार्ग के मन्दिरों में मूलत: यह वाद्य खड़े होकर बजाया जाता है। क्योकि कीर्तनियाँ मूलरूप से भी खड़े होकर ही कीर्तन करते हैं। अनेक स्थानों पर आज भी इसी रूप में खड़े-खड़े कीर्तन सेवा होती है। अतः पखावज को या तो गले में लटका कर बजाते हैं और या इसके लिये काठ का बना हुआ प्रसाधन (स्टेण्ड) प्रयोग करते हैं जहाँ बैठकर बजाते हैं वहां इसके दाये और तथा कहीं-कही दोनो और काट की टिकटी का प्रयोग करत जिससे पखावज जाती है। कहीं-कही पर इसे गोद में लेकर बजाते है।

आवज

डा. वासुदेव शरण ने आवज को ढोल जैसा मढ़ा हुआ वाद्य माना है। तथा इस 'आतोध' शब्द का तद्भव रूप माना है। आतोद्य शब्द नाट्यशास्त्र में भी मिलता है। संगीत रत्नाकर में आवज को हुडका का पर्याय माना है। हुड़का आजकल पर्वतीय प्रदेश में प्रचलित है इसे बड़ा ढोल कह सकते हैं जो लकड़ियों की सहायता से बजाया जाता है। यह भी हो सकता है कि आवज के रूप को ही परिष्कृत कर पखावज वाद्य बन 1 क्योंकि पखावज शब्द की सन्धि विच्छेद करने पर पख + आवज दो शब्द स्पष्ट रूप से सामने आते हैं। संगीत पारिजात (2, 110-119) के अनुसार यह वाद्य सोलह अंगुल लम्ब तथा बीच में से कुछ पतला होता है। इसके मुख आठ अंगुल व्यास के होते हैं जो चमड़े की डोरियों से कसे रहते हैं आदि।

पुष्टिमार्गीय कीर्तनों में भी आवज का उल्लेख अनेक जगहों पर मिलता है लेकिन इसका स्वरूप आज भी विवादग्रस्त है। कुछ लोग इसे डमरू के समान ही उससे कुछ बड़ा मानते हैं। उनकी इस मान्यता को 'आइने अकबरी' का साक्ष्य भी प्राप्त है।

ढोल तथा ढोलक

ढोलक से ढोल का आकार बड़ा होता है। बड़ा होने का कारण ढोल में गांभीर्य अधिक होता है। ये दोनों ही वाद्य होली के अवसर पर विशेष रूप से बजाये जाते हैं।

खंजरी, चंग, ढप

चंग वाद्य गोल चक्र पर खाल को मढने से बना है। चक्र लगभग 3 या 4 इंच ओर से मढ़ा होता है-

चंग का छोटा रूप खंजरी कहलाता है। जिसमें कभी-कभी धातु के छल्ले दिये जाते हैं तथा इसी चंग का बड़ा रूप ढप, डफ अथवा ढफ कहलाता है। ढप होली के दिने ने विशेष रूप से बजाया जाता है। खंजरी, चंग व ढप के उल्लेख कीर्तन साहित्य मिलते हैं।

घन वाद्य

घन वाद्यों का वादन मन्दिरों में अवनद्ध वाद्यों के साथ ही चलता है। कीर्तन साहित्य के अनुसार जिन घन वाद्यों का उल्लेख मिलता है प्रायः वे सभी पुष्टिमार्गीय मन्दिरों में उत्सव क्रम में प्रयुक्त होते हैं।

झाँझ

उत्सवों में पखावज के साथ आवश्यक रूप से बजाई जाती है। अतः पुष्टिमार्गीय मन्दिरों में पखावज और झाँझ आवश्यक रूप से प्राप्त होती है। यहाँ झाँझ और पखावज का इतना गहरा सम्बन्ध है कि बिना झाँझ के उत्सव का रंग अधूरा ही समझा जाता है। श्री कृष्ण जन्माष्टमी से प्रायः आठ दिन पहिले से ही जन्म की बधाइयाँ प्रारम्भ हो जाती हैं। कहीं-कहीं पहिले चार दिनों में फीकी तथा बाद के चार दिनों में मीठी बधाई गायी जाती है। इसका अर्थ झाँझ के प्रयोग से ही सम्बन्ध रखता है। जिन बधाइयों में झाँझ नहीं बजाई जाती वे बधाइयाँ फीकी व जिनके साथ झाँझ बजाई जाती है वे मीठी बधाई कहलाती हैं।

घण्टा

यह पीतल, जस्ता और ताँबा आदि धातुओं के मिश्रण से बना भारी और मोटे दल का होता है। घण्टे के मध्य भाग में एक छोटी-सी घुण्डी लटकी रहती है, जो घण्टे के भीतरी भाग पर आघात करती है। साधारणतया इसे किसी जंजीर या रस्सी के द्वारा मन्दिर में लटकाते हैं। भक्तजन मन्दिर में प्रवेश करते समय इसे बजाते हैं। मध्ययुग में इन्हें हाथियों के गले अथवा पीठ में भी लटकाया जाता था तब ये 'जय घण्टा' कहलाते थे।

ताल

मँजीरा की भाँति धातु की बनी हुई दो पट्टियाँ किन्तु मँजीरा से ताले का आकार बड़ा होता है। तश्तरी के आकार का यह ताल वाद्य एक ओर के किनोर से बजाया जाता है। ताल की ध्वनि मँजीरा से अधिक होती है। इस वाद्य को पकड़ने के लिए इसके गोल चपटे भाग में डोरी डालकर उन्हें सम्बद्ध कर दिया जाता है। महाराष्ट्र में इसी से मिलता-जुलता वाद्य (टाड़) कहा जाता है जो अन्य लोक-वाद्यों के साथ बजाया जाता है।

मंजीरे

जिस तरह पखावज के साथ झाँझ का अनन्य है उसी प्रकार ढोलक के साथ मंजीरों का अन्य सम्बन्ध है। पुष्टिमार्गीय मन्दिरों में भी मंजीरें ट्रक के साथ ही बजाये जाते हैं। विशेष रूप से के आयोजनों में (जन्माष्टमी नन्दोत्सव आदि व मंजीर बजते हुए बड़े अच्छे लगते हैं। कार में झाँझ से बहुत छोटे होते हैं। दोनों हिस्से एक डोरी से बंधे रहते हैं।

जलतरंग

इसमे बड़े कम से प्यालो को लिया जाता है तथा उनमें पानी भरकर कटो से टकरा जाता है। ऐसा करने से प्यालों में जल की तरंगे उठती है, और जो में विलीन हो जाता है। अत: इस वाद्य को जलतरंग कहते हैं।

कीर्तन साहित्य में यद्यपि जल तरंग का उल्लेख अनेक स्थानों पर है और बाघ बजाया भी जाता रहा है लेकिन आजकल इस वाद्य के दर्शन इन मन्दिरों में प्राय: नहीं होते।

इस प्रकार वर्गों के अनुसार विभिन्न वाद्यों का प्रयोग इन मन्दिरों में खूब होता है इनमें से अनेक वाद्य आजकल मन्दिरों में देखने को नहीं मिलते। आजकल इन मन्दिरों में हारमोनियम का प्रयोग प्रचुर मात्रा में होता है।

पंच शब्द बाजे

जन्मोत्सवों पर (यथा जन्माएमी एवं गोस्वामी बालकों के जन्मोत्सव) भगवान के स्वरूप का तिलक करते समय पंच शब्द बाजे' बजते है तथा कीर्तन में 'आज बधाई को दिन नीको, पद की "पंच शब्द बाजे बाजत है घर-घर ते आयौ टीकौ" पंक्ति विशेष रूप से बार-बार दुहराई जाती है।

पंच शब्द बाजों का प्राचीन स्वरूप क्या था यह ज्ञात नहीं है। आजकल इनमें शंख, झाँझ पखावज, शंख एवं नगाड़ा वाद्यों को बजाया जाता है।

उपसंहार

पुष्टिमार्गी सम्प्रदाय के किसी-किसी गृह में जन्माष्अमी की बधाई एक महीना पहले से बैठ जाती है, पर प्राय: पवित्रा एकादशी से बधाई आरम्भ होती है। जन्माष्टमी उत्सव के दिन मङ्गला में भी झाँझ पखावज बजती है। माहात्म्य के मालव राग के पद और जागरण के समय बोले जाते हैं। जन्माष्टमी को पालने का दर्शन बन्द होने पर, नंदोत्सव के बाद, आशीष का पद "चिरजीयो गोपाल" आरती के समय बोला जाता है। तत्पश्चात् ढाढ़ी के पद केवल नवमी को बोले जाते हैं। नन्दमहोत्सव के बाद बधाई बन्द हो जाती है। नित्य सेवा मङ्गला से लेकर शयन आरती तक तथा वार्षिक उत्सव पर और भी विशेष ढंग से वाद्यों का आयोजन किया जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

शर्मा, प्रो0 सत्यभान, 2011, पुष्टिमार्गीय मंदिरों की संगीत परम्परा हवेली संगीत, नई दिल्ली : राधा पब्लिकेशन्स।
शर्मा, डॉ0 नीरा, 2004, अष्टछाप संगीत-एक विश्लेषण, निवाई – नवजीवन पब्लिकेशन्स।
राय, डॉ0 वी.एस. सुदीप, 2011, जहान-ए-सितार (सितार वादन की विभिन्न शैलियों का उद्भव एवं विकास) नई दिल्ली : कनिष्क पब्लिशर्स।
मित्तल, प्रभुदयाल, 1975, ब्रज की कलाओं की इतिहास, नई दिल्ली : साहित्य संस्थान, मथुरा।